जीवन-दृष्टिमें मौलिक परिवर्त्तन

इतिहासके आरंभमें वर्त्तमान जीवन-पर ही अधिक भार दिया जाता था। पारलौकिक जीवनकी बात हम सुख-सुविधामें और फुर्सतके समय ही करते थे। वेदोंके कथनानुसार 'चरैवैति चरैवैति चराति चरोभगः' (अर्थात् चलो, चलो, चलनेवालेका ही भाग्य है) को ही हमने जीवनका मूलमंत्र माना है।

पर आज हमारी जीवन-दृष्टि बिल्कुल बदल गई है। आज हम इस जीवनकी उपेक्षा कर परलोकका जीवन सुधारनेकी ही विशेष चिन्ता करते हैं। इसका दुष्परिणाम यह हुआ है कि इस जीवनमें परिश्रम और पुरुषार्थ करनेकी हमारी आदत बिल्कुल छूट गई है। पुरुषार्थकी कमीसे हमारा जीवन बिल्कुल कृत्रिम और खोखला होता जा रहा है। जिस प्रकार जंगलमें चरनेवाली गाय-बकरीकी अपेक्षा घरपर बँधी रहनेवाली गाय-बकरीका दूध कम लाभदायक होता है; उसी प्रकार घरमें कैद रहनेवाली स्त्रियोंकी सन्तान भी शक्तिशाली नहीं हो सकती। पहले क्षत्रियोंका बल-विक्रम प्रसिद्ध था, पर अब विलासिता और अकर्मण्यतामें पले राजा-रईसोंके बच्चे बहुत ही अशक्त और पुरुषार्थहीन होते हैं। आगेके क्षत्रियोंकी तरह न तो वे लम्बी पैदलयात्रा या घुड़सवारी कर सकते हैं और न और कोई श्रम ही। इसी प्रकार वैश्योंमें भी पुरुषार्थकी हानि हुई है। पहले वे अरब, फारस, मिस्र, बाली, सुमात्रा, जावा आदि दूर-दूरके स्थानोंमें जाकर व्यापार-वाणिज्य करते थे। पर अब उनमें वह पुरुषार्थ नहीं है, अब तो उनमेंसे अधिकांशकी तोंदें आराम-तलबी और आलस्यके कारण बढ़ी हुई नजर आती हैं।

आज तो हम जिसे देखते हैं वही पुरुषार्थ और कर्म करनेके बजाय धर्म-कर्म और पूजा-पाठके नामपर ज्ञानकी खोजमें व्यस्त दीखता है। परमेश्वरकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भक्ति तो उसके गुणोंका स्मरण, उसके रूपकी पूजा और उसके प्रति श्रद्धामें है। पूजाका मूलमंत्र है 'सर्वभूतहिते रतः' (सब भूतोंमें परमात्मा है)— अर्थात् हम सब लोगोंके साथ अच्छा बर्ताव करें, सबके कल्याणकी बात सोचें। और सच्ची भक्ति तो सबके सुखमें नहीं, दुःखमें साझीदार होनेमें है। ज्ञान है आत्म-ज्ञान; जड़से भिन्न, चेतनका बोध ही तो सच्चा ज्ञान है। इसलिए चेतनके प्रति ही हमारी अधिक श्रद्धा होनी चाहिए, जड़के प्रति कम। पर इस बातकी कसौटी क्या है कि हमारी श्रद्धा जड़में ज्यादा है या चेतनमें ? उदाहरणके रूपमें मान लीजिए कि एक बच्चेने किसी धर्म-पुस्तकपर पाँव रख दिया। इस अपराधपर हम उसके तमाचा मार देते हैं। क्योंकि हमारी निगाहमें जड़ पुस्तकसे चेतन लड़का हेच है।

यदि सही मानोंमें हम ज्ञान-मार्गका अनुसरण करें, तो सद्गुणोंका विकास होना चाहिए। पर होता है उल्टा। हम ज्ञान-मार्गके नामपर वैराग्य लेकर लँगोटी धारण कर लेते हैं, शिष्य बनाते हैं और अपनी इहलौकिक ज़िम्मेदारियोंसे छुट्टी ले लेते हैं। दरअसल वैराग्यका अर्थ है जिसपर राग हो, उससे विरत होना। पर हम वैराग्य लेते हैं उन जिम्मेदारियोंसे, जो आवश्यक हैं और उन कामोंसे, जो करने चाहिए। हम वैराग्यके नामपर अपंग पशुओंकी तरह जीवनके कर्म-मार्गसे हट कर दूसरोंसे सेवा करानेके लिए उनके सिरपर सवार होते हैं। वास्तवमें होना तो यह चाहिए कि पारलौकिक ज्ञानसे इहलोकके जीवनको उच्च बनाया जाय। पर उसके नामपर यहाँके जीवनकी जो जिम्मेदारियाँ हैं, उनसे मुक्ति पानेकी चेष्टा की जाती है।

लोगोंने ज्ञान-मार्गके नामपर जिस स्वार्थान्धता और विलासिताको चरितार्थ किया है, उसका परिणाम स्पष्ट हो रहा है। इसकी ओटमें जो कविताएँ रची गईं, वे अधिकांशमें शृङ्गार-प्रधान हैं। तुकारामके भजनों और बाउलोंके गीतोंमें जिस वैराग्यकी छाप है, साफ-सीधे अर्थमें उनमें बल या कर्मकी कहीं गन्ध भी नहीं। उनमें है यथार्थवाद और जीवनके स्थूल सत्यसे पलायन। यही बात मन्दिरों और मठोंमें होनेवाले कीर्त्तनोंके संबंधमें भी कही जा सकती है। इतिहासमें मठों और मंदिरोंके ध्वंसकी जितनी घटनाएँ हैं, उनमें एक बात तो बहुत ही स्पष्ट है कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दैवी शक्तिकी दुहाई देनेवाले पुजारियों या साधुओंने उनकी रक्षाके लिए कभी अपने प्राण नहीं दिये। बख्तियार खिलजीने दिल्लीसे सिर्फ १६ घुड़सवार लेकर बिहार-युक्त-प्रांत आदि जीते और बंगालमें जाकर लक्ष्मणसेनको पराजित किया। जब उसने सुना कि परलोक सुधारनेवालोंके दानसे मंदिरोंमें बड़ा धन जमा है, मूर्तियों तकमें रत्न भरे हैं तो उसने उन्हें लूटा और मूर्तियोंको तोड़ा।

ज्ञान-मार्गके ठेकेदारोंने जिस तरहकी संकीर्णता फैलाई, उससे उन्हींका नहीं, न-जाने कितनोंका जीवन दुःखमय बना। उड़ीसाका कालापहाड़ ब्राह्मण था, पर उसका एक मुसलमान लड़कीसे प्रेम हो गया। भला ब्राह्मण उसे कैसे स्वीकार कर सकते थे? उन्होंने उसे जातिच्युत कर दिया। उसने लाख मिन्नतें-खुशामदें की, माफी माँगी; पर कोई सुनवाई नहीं हुई। अन्तमें उसने कहा कि यदि मैं पापी होऊँ, तो जगन्नाथकी मूर्त्ति मुझे दण्ड देगी। पर मूर्त्ति क्या दण्ड देती? आखिर वह मुसलमान हो गया। फिर उसने केवल जगन्नाथकी मूर्त्ति ही नहीं, अन्य सैकड़ों मूर्त्तियाँ तोड़ीं और मंदिरोंको लूटा। ज्ञान-मार्ग और परलोक सुधारनेके मिथ्या आयोजनोंकी संकीर्णताके कारण ऐसे न-जाने कितने अनर्थ हुए है और ढोंग-पाखण्डोंको प्रश्रय मिला है। पहले शाकद्वीपी ब्राह्मण ही तिलक-चन्दन लगा सकता था। फल यह हुआ तिलक-चन्दन लगानेवाले सभी लोग शाकद्वीपी ब्राह्मण गिने जाने लगे! प्रतिष्ठाके लिए यह दिखावा इतना बढ़ा कि तीसरी-चौथी शताब्दीमें आए हुए विदेशी पादरी भी दक्षिणमें तिलक-जनेऊ रखने लगे।

ज्ञान-मार्गकी रचनात्मक देन भी है। उससे सद्गुणोंका विकास हुआ है। परन्तु परलोकके ज्ञानके नामसे जो सद्गुणोंका विकास हुआ है, उसके उपयोगका क्षेत्र अब बदल देना चाहिए। उसका उपयोग हमें इसी जीवनमें करना होगा। राकफेलरका उदाहरण हमारे सामने है। उसने बहुत-सा दान दिया, बहुत-सी संस्थाएँ खोलीं। इसलिए नहीं कि उसका परलोक सुधरे, बल्कि इसलिए कि बहुतोंका इहलोक सुधरे। सद्गुणोंका यदि इस जीवनमें विकास हो जाय, तो वह परलोक तक भी साथ जायगा। सद्गुणोंका जो विकास है, उसको वर्त्तमान जीवनमें लागू करना ही सच्चा धर्म और ज्ञान है। पहले खान-पानकी इतनी सुविधा थी कि आदमीको अधिक पुरुषार्थ करनेकी आवश्यकता नहीं होती थी। यदि उस समय आजकल जैसी खान-पानकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असुविधा होती, तो वह शायद और अधिक पुरुषार्थ करता। पर आज तो यह पुरुषार्थकी कमी ही जनताकी मृत्यु है।

पहले जो लोग परलोक-ज्ञानकी साधनामें विशेष समय और शक्ति लगाते थे, उनके पास समय और जीवनकी सुविधाओंकी कमी नहीं थी। जितने लोग यहाँ थे, उनके लिए काफी फल और अन्न प्राप्त थे। दुधारू पशुओंकी भी कमी न थी, क्योंकि पशुपालन बहुत सस्ता था। चालीस हजार गौओंका एक गोकुल कहलाता था। उन दिनों ऐसे गोकुल रखनेवालोंकी संख्या कम न थी। मालवा, मेवाड़, मारवाड़ आदिकी गायोंके जो वर्णन मिलते हैं, उनमें गायोंके उदसकी तुलना सारनाथमें रखे 'घटोध्नि' से की गई है। इसीसे अनुमान किया जा सकता है कि तब गौएँ कितना दूध देती थीं। कामधेनु कोई देवी गाय न थी, बल्कि यह संज्ञा उस गायकी थी, जो चाहे जब दुहनेपर दूध देती थी और ऐसी गौओंकी कमी न थी। ज्ञान-मार्गके जो प्रचारक (ऋषि) जंगलोंमें रहते थे, उनके लिए कन्द-मूल, फल और दूधकी कमी न थी। त्यागका आदर्श उनके लिए था। उपवासकी उनमें शक्ति होती थी, क्योंकि आगे-पीछे उनको पर्याप्त पोषण मिलता था। पर आज लोग शहरोंमें रहते हैं, पशु-धनका ह्रास हो रहा है और आदमी अशक्त एवं अकर्मण्य हो रहा है। बंगालके १९४३ के अकालमें भिखारियोंमेंसे अधिकांश स्त्रियाँ और बच्चे ही थे, जिन्हें उनके सशक्त पुरुष छोड़ कर चले गये थे। केवल अशक्त बच रहे थे; जो भीख माँग कर पेट भरते थे।

मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि हमें अपनी जीवन-दृष्टिमें मौलिक परिवर्तन करना चाहिए। जीवनमें सद्गुणोंका विकास इहलोकको सुधारनेके लिए करना चाहिए। आज एक ओर हम आलसी अकर्मण्य और पुरुषार्थहीन होते जा रहे हैं और दूसरी ओर पोषणकी कमी तथा दुर्बल सन्तानकी वृद्धि हो रही है। गाय रख कर घर-भरको अच्छा पोषण देनेके बजाय लोग मोटर रखना अधिक शानकी बात समझते हैं। यह खामखयाली छोड़नी चाहिए और पुरुषार्थ-वृत्ति पैदा करनी चाहिए। सद्गुणोंकी कसौटी वर्त्तमान जीवन ही है। उसमें सद्गुणोंको अपनाने, और उनका विकास करनेसे, इहलोक और परलोक दोनों सुधर सकते हैं।

[नया समाज, सितम्बर १९४८]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org